

# लोकतन्त्र का वैश्विक परिदृश्य एवं चुनौतियाँ : एक विश्लेषण

डॉ० एम० ए० खान<sup>1\*</sup>, डॉ० आबिदा खातून<sup>2</sup>

<sup>1</sup> एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान/प्राचार्य, कृष्णा इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बिजनौर।

<sup>2</sup> असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, रानी भाग्यवती देवी स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, बिजनौर।

*सारांश - लोकतंत्र शब्द बोलने में छोटा परंतु इसका अर्थ उतना ही बड़ा और जटिल निकलता है। डेमोक्रेटिक शब्द यूनानी भाषा के डेमोस (Demos) और क्रेटिया (Cratia) यह 2 शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है लोग और शासन, शाब्दिक अर्थ में जनता का शासन। लोकतन्त्र की परिभाषा के अनुसार यह "जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है"। अर्थात् लोकतन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत जनता अपनी इच्छा से निर्वाचन में आए हुए किसी भी दल को अपना वोट देकर अपना प्रतिनिधि चुन सकती है और उनकी सरकार बना सकती है। लोकतंत्र केवल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का प्रकार ही नहीं बल्कि जीवन के प्रति विशेष दृष्टिकोण में भी उसका नाम है। लोकतंत्र में सभी व्यक्तियों को एक दूसरे के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा व्यवहार अपने प्रति पसंद लोगों से करते हैं।*

*अमेरिका सहित सभी लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं वाले देशों में इसी विभेद को आधार बनाकर राजनीति की जा रही है। अश्वेतों तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों के ऊपर घातक हमलों की घटनाओं ने अविश्वास तथा अनिश्चितता के वातावरण का निर्माण किया है। इसी बीच ऐसे कानूनों का निर्माण किया जा रहा है जिनसे अश्वेत तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों में कटौती की जा सके तथा इस सबके माध्यम से शासन सत्ता पर एकाधिकार स्थापित किया जा सके।*

*कुँजी - लोकतंत्र, प्रतिनिधि, विभेद, अश्वेतों, धार्मिक अल्पसंख्यकों।*

-----X-----

"हम इन सिद्धांतों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं और उन्हें अपने स्रष्टा द्वारा कुछ अविच्छिन्न अधिकार मिले हैं। जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज इन्हीं अधिकारों में है। इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए समाज में सरकारों की स्थापना हुई जिन्होंने अपनी न्यायोचित सत्ता शासित की स्वीकृति से ग्रहण की। जब कभी कोई सरकार इन उद्देश्यों पर कुठाराघात करती है तो जनता को यह अधिकार है कि वह उसे बदल दे या उसे समाप्त कर नई सरकार स्थापित करे जो ऐसे सिद्धांतों पर आधारित हो और जिसकी शक्ति का संगठन इस प्रकार किया जाए कि जनता को विश्वास हो जाए कि उनकी सुरक्षा और सुख निश्चित हैं।"

04 जुलाई, 1776 के दिन अमेरिका में आयोजित सम्मेलन में सर्वसम्मति से 13 राज्यों को मिलाकर संयुक्त राज्य अमेरिका बनाते समय की गई उपरोक्त घोषणा मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के दार्शनिक सिद्धांतों के दृष्टिगत की गयी। इस घोषणापत्र में कुछ ऐसे महत्व के सिद्धांत रखे गए जिन्होंने

विश्व की राजनीतिक विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। समानता का अधिकार, जनता का सरकार बनाने का अधिकार और अयोग्य सरकार को बदल देने अथवा उसे हटाकर नई सरकार की स्थापना करने का अधिकार आदि ऐसे सिद्धांत थे जिन्हें सफलतापूर्वक क्रियात्मक रूप दिया जा सकेगा, इसमें उस समय अमरीकी जनता को भी संदेह था परंतु उसने इनको सहर्ष स्वीकार कर सफलतापूर्वक कार्यरूप में परिणत कर दिखाया।

यह दृष्टिकोण संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापकों का भी था। मानव अधिकारों के घोषणा पत्र में पुनः दोहराया गया कि सभी मनुष्यों की रचना समान रूप से हुई है, तथापि उस समय अमेरिका में अफ्रीकी मूल के लाखों-लाख अश्वेतों को दास बनाया हुआ था और दक्षिणी अंचल के खेतों में बतौर बंधुआ मजदूर झोंक रखा था। उनके साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था और उनसे प्रत्येक वह कार्य करवाया जाता था, जिसे श्वेत अमेरिकी अपने खेतों या घरों में करना पसंद

न करें। उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-फिरने और सरकारी परिवहन का प्रयोग करने की मनाही थी। सार्वजनिक परिवहन में सफर और अपनी मनपसंद सीटों पर बैठ सकें, इसके लिए अनुमति बनने में एक सदी से ज्यादा वक्त लग गया। कहने को कह दिया कि 'सरकार को मिली न्यायपूर्ण शक्ति शासित जनता की सहमति से प्राप्त होती है', लेकिन अश्वेतों को मतदान का अधिकार नहीं था। यहां तक कि श्वेत महिलाओं तक को भी वोट देने का हक नहीं था। बहुत संघर्ष के बाद महिलाओं को वर्ष 1918 में तो अश्वेतों को वर्ष 1970 में मतदान का अधिकार मिल पाया था। गोरों और कालों के बीच व्याप्त खाई के कारण आज भी समानता पूरी तरह कायम नहीं हो पाई है।

अमेरिका सहित सभी लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं वाले देशों में इसी विभेद को आधार बनाकर राजनीति की जा रही है। डोनाल्ड ट्रंप इसका उदाहरण हैं। वे अपने समर्थकों को यह समझाने में सफल रहे हैं कि चुनाव के नतीजे उनसे 'छीने' गए हैं। 6 जनवरी, 2021 के दिन ट्रंप ने अपने समर्थकों द्वारा व्हाइट हाउस पर कब्जा करवाकर लगभग तख्ता पलट कर डाला था।

इसी बीच अश्वेतों पर हमलों का सिलसिला बढ़ गया है, स्कूलों, मॉल्स इत्यादि में जब-तब उन पर घातक वारदातें हो रही हैं, घबराए लोगों द्वारा विभिन्न किस्म के हथियारों की खरीद में कई गुणा वृद्धि हुई है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण परिदृश्य अनिश्चितता भरा है और लगता है अमेरिकी गणराज्य ऐसे ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठा है जो कभी भी फट सकता है।

ठीक इसी दौरान और भी ज्यादा खतरनाक घटनाक्रम चल रहा है। यानी रिपब्लिकन पार्टी शासित राज्यों में ऐसे कानून लाने की कोशिश हो रही है, जिससे अल्पसंख्यक मतदान से वंचित हो जाएंगे। इसका उद्देश्य डेमोक्रेटिक पार्टी के वोटर आधार को कम करना है। इस प्रकार के कानून बनाने के प्रयास भी चल रहे हैं, जिससे राज्य विधायिका को आधिकारिक चुनावी नतीजे उलटने का अधिकार मिल जाएगा।

राष्ट्रपति जो बाइडेन को लोकतंत्र के समक्ष इस अति गंभीर चुनौती का अहसास हो गया है, इसलिए उन्होंने खासतौर पर उपराष्ट्रपति को नियुक्त किया है कि वह अपना तमाम ध्यान और समय लोकतंत्र-विरोधी शक्तियों से लड़ाई का नेतृत्व करने में लगाएं। बाइडेन यूरोपियन देशों की यात्रा कर रहे हैं, उनका प्रयास है कि जनतांत्रिक राष्ट्रों को संगठित कर लोकतंत्र-विरोधी शक्तियों से मिलकर लड़ने की साझा रणनीति बनाई जाए।

प्रस्तुत शोध पत्र में अमेरिकी परिदृश्य की विस्तृत चर्चा इसलिए आवश्यक थी, क्योंकि हम लोग उस देश को नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रकाश स्तंभ एव शेष दुनिया के लिए जनतांत्रिक व्यवस्था का प्रणेता मानते हैं। विश्वभर के देशों में लोकतंत्र स्थापित करवाने को हालांकि अमेरिका सदा तत्पर रहा है, परंतु ठीक इसी समय लैटिन अमेरिकी, मध्य-पूर्व और अफ्रीका के कुछ देशों में तानाशाही व्यवस्था का समर्थन भी करता दिखाई देता है। इसके पीछे कारण हैं, अपने सामरिक एवं आर्थिक हितों का ध्यान रखना और इस कार्य सिद्धि हेतु अमेरिका ने कई लड़ाइयां भी लड़ी हैं।

शीतयुद्ध काल में, दुनिया स्पष्टतः सोवियत और पश्चिमी खेमों ( तानाशाही और जनतांत्रिक व्यवस्था ) में बंटी हुई थी। बर्लिन की दीवार ढहने के बाद हालांकि बहुत से देशों ने सोवियत खेमे से किनारा कर लिया था, किंतु अधिकांश में बदलाव केवल यही हुआ कि वामपंथी व्यवस्था की जगह तानाशाही स्थापित। बेशक कई मुल्कों ने नाटो संगठन की सदस्यता ले ली, किंतु अनेकानेक फिर भी रूस के प्रभाव तले बने हुए हैं। जहां कहीं चुनाव हुए भी, वहां तानाशाहों ने विपक्ष को कुचल डाला।

संक्षेप में कहें तो वामपंथी व्यवस्था ढहते ही अधिनायकों ने सत्ता संभाल ली और अमेरिका, रूस और चीन भी उनके साथ बदलने लगे। ऐसे देशों में गणतंत्र कहीं नहीं है, केवल सत्तारूढ़ दल का मुखौटा बनी चंद संस्थाएं बोलने की आजादी, सीमित धार्मिक स्वतंत्रता, मुक्त मीडिया होने इत्यादि का नाटक करती दिखाई देती हैं।

यहां तक कि वियतनाम, फिलीपींस, कम्बोडिया, म्यांमार, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि में 'लोकतांत्रिक ढंग से चुने तानाशाह' राज कर रहे हैं। चुनावों में मतदाता को डराया धमकाया जाता है, धांधलियां होती हैं और विभिन्न किस्म की दबंगई बरती जाती है। यूके और पश्चिमी देशों में भले ही दक्षिणपंथी लहर जोर पकड़ रही है, जो कि लोकतंत्र के लिए खतरा है, तथापि वहां अभी भी गणतंत्र कायम है।

उपरोक्त वर्णन वैश्विक परिदृश्य पर लोकतंत्र के मौजूदा रूप का एक लघु अवलोकन भर है। सवाल यह पैदा होता है कि इसके पीछे कारण क्या है ? हम ऐसे नेता को चुनते ही क्यों हैं जो लोकतांत्रिक नियमों से परे हटने लगते हैं ? कोई व्यक्ति अपने हाथों में अधिकाधिक शक्ति केंद्रित करने पर क्यों उतारू हो जाता है, ढंग चाहे कानूनी हो या गैरकानूनी अथवा छलकपट वाला। सर्वप्रथम परिवार वह जगह होती है जहां से

किसी का अधिनायकवादी रवैया पहचान में आता है। आगे यह कार्यस्थल में परिलक्षित होता है और अंततः राजकाज में एकदम जाहिर हो जाता है। एक प्रबुद्ध जनतंत्र बनने की राह में रुकावटों में एक सबसे बड़ी है, सही शिक्षा व्यवस्था का अभाव। हम आज भी अपने बच्चों को सिखाने और मनन करने योग्य बनाने में आधुनिक तौर-तरीकों का इस्तेमाल नहीं कर रहे।

इस बारे में पश्चिमी देश ज्यादा खुलापन लिए हैं, खासकर शिक्षा प्रणाली में, जो छात्रों में मनन और अनुसंधान करने को बढ़ावा देती है। दूसरी ओर हमारे यहां कक्षा में सवाल पूछने को हतोत्साहित किया जाता है क्योंकि हमारी शिक्षा व्यवस्था रट्टा मारने के लिहाज से बनाई गई है। इसके चलते हमारे विश्वविद्यालयों से शायद ही कोई ढंग की खोज निकलती है जबकि अमेरिका, यूके और यूरोपियन देशों के समकक्ष विद्यार्थी हैरान कर देने वाली खोजें करते हैं। यहां तक कि कुछेक छात्र पढ़ाई के दौरान नोबेल पुरस्कार तक जीत चुके हैं, कुछेक नामी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में महत्वपूर्ण पदों पर हैं, तो बहुत से परिष्कृत खोज करने में जुटे हैं। यदि विश्व में हमें एक शक्तिशाली राष्ट्र और लोकतांत्रिक मूल्यों वाला देश बनना है तो अपनी शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल सुधार लाने की आवश्यकता है, जहां स्वतंत्र चिन्तन और भिन्न दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता हो, यही नहीं विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के लिए पर्याप्त धन भी रखा जाए।

जिन लोकतांत्रिक समाजों में मुक्त विचार और असहमति प्रकट करने को बढ़ावा नहीं दिया जाता वहां नेतृत्व की प्रवृत्ति एकतरफा निर्णय लेने वाली और निरंकुश बन जाती है। राजकाज में पारदर्शिता कम होती जाती है और जनता की सीधी पहुंच नेता तक नहीं रहती। इससे नेतृत्व और नागरिक और ज्यादा दूर हो जाते हैं और शासन चलाने वाला सुरक्षा बलों, पुलिस और प्रशासनिक अमले पर ज्यादा निर्भर रहना प्रारम्भ कर देता है। दरबारी बने सरकारी अफसर वफादारी निभाने में लग जाते हैं क्योंकि सत्ता की ताकत और फायदों से मिलने वाला अंश उनसे यह करवाता है। कई बार लोगों को डराने-धमकाने या सभाओं-जलसों में भीड़ जुटाने को राजनीतिक गुंडों की निजी फौज पैदा की जाती है। यह सब मिलकर नेताओं की पकड़ मजबूत बनाने के लिए ठोस आधार प्रदान करते हैं और वह अपनी जगह सुरक्षित कर लेने के बाद और ज्यादा ढीठ और दबंग बनने लगता है। जैसा कि अमेरिका में ट्रंप वाले मामले में हुआ है, जब संविधान और लोकतंत्र को धता बताने की कोशिश की गई है। ऐसी हरकतों को केवल लोगों की सम्मिलित इच्छाशक्ति से ही रोका या थामा जा सकता है। वैसे भी कहावत है कि 'आजादी की कीमत लगातार चौकसी रखकर चुकानी पड़ती है।'

भारतीय लोकतंत्र भी विश्व के अन्य लोकतंत्रों की भांति विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त है। हमारी सबसे बड़ी समस्या वर्ण व्यवस्था है जिसने समाज के भीतर अनेकों विषमताओं तथा विसंगतियों को जन्म दिया है। दुर्भाग्य से वर्ण भेद तथा धार्मिक कट्टरता आदि भारत की राजनीति की धुरी बने हुए हैं। इस व्यवस्था ने करोड़ों लोगों को प्रभावित करने वाली जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था हमें दी है, उसको सुधारने के लिए एक के बाद एक आई सरकारों ने महज दिखावटी प्रयास किए हैं, बल्कि इस कुप्रथा को जारी रखे हुए हैं। जाति-वर्ण भेद वे अवयव हैं, जिनका प्रयोग कर ब्रिटिश हाकिमों ने 'फूट डालो और राज करो' नीति में महारत प्राप्त की थी और हम शिक्षा, रोजगार और चुनावों में इस पर अमल कर रहे हैं। ब्रिटिश हुकमरानों का मकसद हिंदू-मुस्लिम रार को हवा देकर अपने राजपाट की अवधि बढ़ाना था, वर्तमान समय में राजनीतिक दल इसका प्रयोग चुनावी फायदा उठाने और सदियों पुरानी रंजिशें निकालने का आधार बनाने में कर रहे हैं। ऐसा करके न केवल हमने जनतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर किया है बल्कि खुद लोकतंत्र को भी।

इससे आगे क्या? हमने देखा है कि न तो घर, न ही समाज या सरकार में लोकतांत्रिक मूल्यों को उत्साहित नहीं किया जाता। तो क्या तानाशाही बेहतर है। यानी एक व्यक्ति और एक दल विशेष की? इसके लिए मेरे पास विद्वान बुजुर्ग की कही बात दोहराने के अलावा कुछ नहीं है और उनका नाम है सर विंस्टन चर्चिल-वह एक मंझे हुए राजनीतिज्ञ, युद्धकाल में दृढ़ निश्चयी नेता और बड़े इतिहासकार थे। उनका कहना था 'पाप और मुसीबत भरी इस दुनिया में, आज तक विभिन्न प्रणाली वाली राज-व्यवस्थाएं बनाने की कोशिशें हुई हैं और आगे भी होंगी। किंतु कोई यह दिखावा नहीं कर सकता कि लोकतांत्रिक व्यवस्था सर्वोत्तम या बाकियों से बेहतर है। वास्तव में, ऐसा कहा जाता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था सबसे खराब शासन व्यवस्था है, सिवाय उन राज-व्यवस्थाओं के, जो समय-समय पर आजमाई जा चुकी हैं।' इस व्यवस्था (लोकतंत्र) में आप और मैं मतदान का अधिकार रखते हैं, हमारे पास उठाने को आवाज़ है, अपने नज़रिए हैं। जबकि तानाशाही में, आपके पास इनमें से एक भी नहीं होता, तिस पर आजादी और शायद जान भी जाने की गुंजाइश रहती है।

### सन्दर्भ स्रोत

1. David Held, "Democracy : From City- States to a Cosmopolitan Order", Political Studies, 11(1992), pp, 10-39.
2. Henry Kissinger, US Secretary of State, on the American Policy of Destabilising the Socialist

Regime of Salvador Allende in Chile. CIA Official Minutes of 27 June, 1970.

3. Finer, S.E. "The Liberal Democratic State" in Comparative Government (Penguin Books, 1974), pp. 62-74.
4. Macpherson, C.B. The Life and Times of Liberal Democracy (Oxford University Press, 1977).
5. Watts, Duncan "The Growing Attractions of Direct Democracy", Talking Politics, (1997).

---

### Corresponding Author

डॉ० एम० ए० खान\*

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान/प्राचार्य, कृष्णा  
इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बिजनौर।